महाकाल लोक में प्रतिमा निर्माण के वास्तुशास्त्रीय सन्दर्भ

दर्शना शर्मा*
डॉ. उपेन्द्र भार्गव**

सारांश

भारतीय ज्योतिष शास्त्र का अभिन्न अंग वास्तुशास्त्र है जिसमें मानव जीवन के लिए परम उपयोगी आवासीय सिद्धान्तों का स्वतन्त्र प्रतिपादन किया गया है। इसमें आवासीय वास्तु तथा देवालय वास्तु प्रमुख भाग हैं। देवालय वास्तु के अंतर्गत् प्रतिमा निर्माण का विशेष वर्णन किया जाता है जिसमें देवप्रतिमाओं के निर्माण, मापन, पदार्थ चयन, स्वरूप, अलंकरण, मुद्रा, प्राण प्रतिष्ठा तथा स्थापना विधान का विस्तृत निरूपण प्राप्त होता है। भारतीय परम्परा में प्रतिमा कला का सशक्त माध्यम है तथा वह आध्यात्मिक चेतना व दिव्यता की प्रतीक मानी गई है। वैदिक काल में जहाँ निराकार उपासना का प्राधान्य था वहीं पुराण एवं आगम परम्परा में सगुण उपासना के विकास के साथ प्रतिमा निर्माण विज्ञान का भी उत्कर्ष हुआ। प्रस्तुत शोधपत्र में शिला, काष्ठ एवं धातु निर्मित प्रतिमाओं के निर्माण विधान का विवेचन किया गया है। साथ ही महाकाल लोक, जगन्नाथ पुरी तथा पद्मनाभस्वामी मंदिर आदि के उदाहरणों द्वारा प्रतिमा निर्माण की व्यावहारिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र से स्पष्ट है कि प्रतिमा निर्माण विज्ञान भारतीय ज्ञान परम्परा का एक समन्वित वैज्ञानिक अनुशासन है जिसमें गणित, धातुविज्ञान, वास्तुशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र एवं अध्यात्म का अद्भुत समन्वय निहित है।

कुञ्जीशब्द - प्रतिमा निर्माण विज्ञान, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, देवप्रतिमा, प्राण-प्रतिष्ठा, मयमतम्, बृहत्संहिता, महाकाल लोक, भारतीय ज्ञान परम्परा, मूर्तिकला।

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में देवप्रतिमा उपासना का सर्वोत्कृष्ट साधन है और इसके साथ ही वह धर्म, अध्यात्म, कला, स्थापत्य एवं शिल्पविज्ञान का सजीव प्रतिरूप है। प्राचीन काल से ही भारत में देवालय निर्माण एवं प्रतिमा प्रतिष्ठा की समृद्ध परम्परा रही है। वैदिक युग में देवताओं की निराकार उपासना का प्राधान्य था, किन्तु उपनिषद्, पुराण तथा आगमिक परम्परा के विकास के साथ सगुण उपासना का विस्तार हुआ जिसके परिणामस्वरूप प्रतिमा निर्माण विज्ञान

का क्रमिक विकास हुआ। भारतीय शिल्पशास्त्र एवं वास्तुशास्त्र में प्रतिमा निर्माण के लिए शिला चयन, धातु संयोजन, काष्ठ संग्रह, मापन प्रणाली, मुद्रा, भाव, अलंकरण तथा प्राण प्रतिष्ठा तक के विस्तृत नियम निर्धारित किए गए हैं। वास्तु ग्रन्थों में प्रतिमा के आकार, अनुपात, दिशा, प्रतिष्ठा काल एवं शुभाशुभ विचारों का सूक्ष्म वर्णन प्राप्त होता है। आधुनिक सन्दर्भों के अनुसार प्राचीन वैदिक सिन्धु-सरस्वती सभ्यता के गर्भ में भी भारतीय मूर्तिकला के ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त हुए हैं जिनमें कांस्य नृत्यांगना से लेकर गुप्तकालीन प्रतिमाओं एवं वर्तमान में महाकालेश्वर मंदिर परिसर में स्थित महाकाल लोक के नवनिर्माण में निकलते हुए प्राचीन मन्दिरों व शैव आगम के अवशेषों की कलात्मक प्रतिमाएं प्रतिमा विज्ञान की प्राचीनता का सर्वोत्कृष्ट जीवन्त उदाहरण हैं। भारतीय परम्परा में देवालय निर्माण की परम्परा आस्था की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम रहा है बृहत्संहिता के प्रासादलक्षणाध्याय के अनुसार धर्म और यश की वृद्धि हेतु भी देवालय का निर्माण किया जाता है –

कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामान् विनिवेश्य च।
देवतायतनं कुर्यात् यशोधर्माभिवृद्धये॥[1]

इस प्रकार देवालय निर्माण के बाद प्रतिमा निर्माण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम पदार्थ चयन किया जाता है। प्रतिमा निर्माण में प्रायः दोषादि से रहित पाषाणों का प्रयोग किया जाता है। भागवत महापुराण में अष्टविध प्रतिमाओं का उल्लेख मिलता है –

शैलीदारुमयी लौहीलेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता॥[2]

इतिहास की दृष्टि से मोहनजोदड़ो की कांस्य नृत्यांगना मधुच्छिन्न (lost wax) विधि का प्राचीन उदाहरण प्रस्तुत करती है जबकि गुप्तकाल भारतीय मूर्तिकला का स्वर्णयुग माना जाता है। सारनाथ की बुद्ध प्रतिमाओं में आध्यात्मिक शांति, संत्तुलन एवं आदर्श अनुपात का उत्कृष्ट समन्वय दृष्टिगोचर होता है। शिला निर्मित प्रतिमाओं के लिए ग्रेनाइट एवं बलुआ पत्थर विशेष रूप से उपयुक्त माने जाते हैं। शास्त्रों में शिला चयन के विषय में कहा गया है –

एकवर्णाः स्थिराः स्निग्धाः सुखसंस्पर्शनान्विताः।
प्राचीनाश्चाप्युदीचीना भूमग्राः शुभदाः शिलाः॥[3]

इसी प्रकार उज्जैन में महाकाल लोक में स्थित प्रतिमाएं मुख्यतः बलुआ पत्थर से निर्मित हैं। लगभग ६०० मीटर लम्बे इस भव्य कॉरिडोर में भगवान शिव की लीलाओं पर आधारित ७० से अधिक मूर्तियां, ५० से ज्यादा भित्ति शिल्प तथा 108 अलंकारिक स्तम्भ स्थापित किये गये है। यहाँ ८ फीट से १८ फीट तक की विविध प्रतिमाएं निर्मित हैं जिनमें चन्द्रशेखर महादेव प्रतिमा, नटराज शिव, समुद्र मन्थन, पञ्चमुखी हनुमान, शिव-सती कथा दृश्य आदि प्रतिमाएँ प्रमुख हैं।

[1]बृहत्संहिता - ५६.1।
[2]श्रीमद्भागवतमहापुराण - ११.२७.१२।
[3]मयमतम् (पादप्रमाणद्रव्यपरिग्रहविधानम्) - ६७।

८-६ फीट की प्रतिमाएं भी हैं जिनमें बटुकभैरव, सप्तऋषि, शनिदेव आदि की प्रतिमाएँ सम्मिलित हैं। मयमतम् के प्रतिमालक्षणाध्याय में देवप्रतिमाओं के स्वरुप का वर्णन करते हुए सूर्य का लक्षण प्राप्त होता है -

सैकचक्रं तु सप्ताश्वमरुणाग्रं महारथम्।
हस्तद्वये च कमलं कञ्चुकच्छन्नवक्षसम्।।[4]
अकुञ्चितसुकेशं तु प्रभामण्डलमण्डितम्।
कोशवेष्टेनयुक्तं वा स्वर्णरत्नविभूषितम्॥[5]
मुकुटं वा विधातव्यमन्यत्सर्वं सुमण्ड़नम्।

अर्थात् सूर्य का एक बड़ा रथ, एक चक्र, सात अश्वों एवं आगे अरुण (सूर्य का सारथी) से युक्त रहता है। दो हाथों वाले हाथ में कमल पुष्प से युक्त वक्ष कञ्चुक से आच्छादित रहता है। इनके सुन्दर केश तथा प्रभामण्डल से युक्त होते हैं। स्वर्ण तथा रत्नों से सुसज्जित रहते हैं उन्हें मुकुट से एवं अन्य सभी अलंकरणों से युक्त करना चाहिए। बृहत्संहिता के प्रतिमालक्षणाध्याय के अनुसार प्रतिमा के भूषण, वेष, अलंकार और मूर्ति अपने अपने देश के अनुरूप बनाना चाहिए क्योंकि शुभ लक्षणों से युक्त प्रतिमा सदा शिल्पी की उन्नतिकारक होती है। यथा **देशानुरूपभूषणवेषालंकारमूर्तिभिः.....**[6] इसी प्रकार महाकाल लोक में नवग्रह मण्डल में सूर्य की प्रतिमा है जो कि वायव्य कोण में है। सूर्य देवता रथ पर आरूढ़ हैं, रथ ७ अश्वों द्वारा संचालित है। सूर्य का सुन्दर मुकुट, किरणोंरूप गोलाकार बना हुआ है। मुकुट के पीछे भी लघुचक्र अंकित है। मस्तक पर सूर्य तिलक है, बाल खुले हैं, दोनों कानों में कुण्डल शोभायमान है, वस्त्र व आभूषणों से युक्त है। इस प्रकार ग्रन्थ में दिए हुए लक्षण के अनुरूप ही यहाँ पर प्रतिमा दिखाई दे रही है। वहाँ पर कुछ मूर्तियां वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों से आंशिक भिन्न भी दिखाई देती हैं जैसे शरभ अवतार के लक्षण कुछ भिन्न प्रतीत होते हैं। महाकाल लोक में यह अवतार पश्चिम दिशा में स्थित है। भगवान शिव ने शरभ अवतार धारण किया, जो विशेष रूप से नृसिंह अवतार की शक्ति शान्ति के लिए प्रकट हुआ। मूल रूप से आधा सिंह, आधा पक्षी के रूप में यह अवतार था जिसमें दो विशाल पंख, आठ पैर, और शक्तिशाली रूप दर्शाया गया है। चार पैर दिखाए गए हैं, चार हाथ दिखाई दे रहे हैं। प्रतिमा में सिंह और पक्षी का रूप होना चाहिए परन्तु यहाँ पर सिंह और मानव रूप दिखाई दे रहा है, क्योंकि पंख दिखाई नही दे रहे हैं। शरभ अवतार में आठ पैर बताए गये हैं यहाँ पर चार ही पैर दिखाए गये हैं। मुख सिंह जैसा दिखाई दे रहा है, ४ हाथ दिखाई दे रहे हैं। मुख खुला हुआ हैं व जिह्वा बाहर निकल रही है। मुख भयावह, एक दानव शरभ देव के सामने हाथ जोड़ कर बैठा हुआ है। ऐसा लग रहा है जैसे वह अपने प्राणों की भिक्षा मांग रहा

[4]मयमतम् - 36.१२७।
[5]मयमतम् - 36.१२८।
[6]बृहत्संहिता - ५८.२६।

है।[7] ग्रन्थ के अनुरूप देखने पर २ असमानता दिखाई दे रही हैं। भगवान् शिव ने शरभ रूप धारण किया ताकि भगवान नृसिंह के क्रोध को शान्त किया जा सके। शरभ अवतार में शिवजी ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए नृसिंह को नियंत्रण में लिया। इससे स्पष्ट होता है कि महाकाल लोक की प्रतिमाएं देवालय के गर्भगृह में प्रतिष्ठित न होकर प्रदर्शनीय स्वरुप में है अतः वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों के नियमों का पूर्णतः अनुगमन नही किया गया है क्योंकि देवालय के भीतर विराजित प्रतिमा पूजनीय होती है वहां सभी नियमों का पालन अत्यन्त आवश्यक होता है। इस प्रकार महाकाल लोक के निर्माण से धार्मिक पर्यटन एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण हो रहा है। प्रतिमा निर्माण में काष्ठ का भी महत्वपूर्ण स्थान है। मयमतम् के पादप्रमाणद्रव्यपरिग्रहविधानम् अध्याय में काष्ठ हेतु वृक्ष के संग्रह के विषय में बताया गया है –

सर्वद्वारिकनक्षत्रे शुभपक्षमुहूर्तके।
गच्छेदरण्यं द्रव्यार्थी कृतकौतुलमंगलः॥[8]

अर्थात् शुभ नक्षत्र एवं मुहूर्त में विधिपूर्वक वन से काष्ठ संग्रह करना चाहिए ।इसका उत्कृष्ट उदाहरण जगन्नाथ पुरी मंदिर से प्राप्त होता है। पौराणिक कथा के अनुसार आचार्य विश्वकर्मा ने भगवान जगन्नाथ की प्रतिमा का निर्माण गुप्त रूप से किया था लेकिन समय से पहले द्वार खोलने पर वे बिना हाथ पैर के ही प्रतिमा अधूरी छोड़ कर चले गये। यह प्रतिमा भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य ह्रदय (अस्थि) को धारण करती है। यह प्रतिमाएं नीम की लकड़ी से बनी है जो अपने अनूठे स्वरुप के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ प्रतिमा केवल प्रतीक नही, बल्कि ब्रह्म का साक्षात् सजीव स्वरुप मानी जाती है। जब अधिकमास आता है तब नवकलेवर संस्कार किया जाता है, जिसमें पुरानी प्रतिमाओं के स्थान पर नई प्रतिमाएं बनाई जाती है। देवी संकेतों द्वारा वृक्ष चयन, गुप्त अनुष्ठान व ब्रह्म तत्त्व का स्थानांतरण किया जाता है। जगन्नाथ प्रतिमा का विशिष्ट रूप भक्त के मन में सहजता और निकटता उत्पन्न करता है। यहाँ सौंदर्य का माप शास्त्रीय सम्मिति से अधिक “भाव प्रभाव” पर आधारित है। धातु निर्मित प्रतिमाओं में स्वर्ण, रजत, ताम्र को श्रेष्ठ माना गया है। कांसा – सीसा की प्रतिमाओं की स्थापना कभी नही कर्ण चाहिए। मिश्र धातुओं में पीतल धातु की स्थापना का कोई दोष नहीं हैं। जैसा कहा भी गया है –

स्वर्णरूप्य ताम्रमयं वाच्यं धातुमयं परम्।
कांस्य सीसबङ्गमयं कदाचिन्नैव कारयेत्॥[9]
तत्र धातुमये रीतिमयमाद्रियते क्वचित्।
निषिद्धो मिश्रधातुः स्याद् रीतिः कैश्चिच्च गृह्यते॥[10]

---

[7]उज्जैन स्थित महाकाल लोक के प्रत्यक्ष अवलोकन पर आधारित।

[8]मयमतम् - 15.८१।

[9]वास्तुसर्वस्वम् - पृ .२२६।

[10]वास्तुसर्वस्वम् - पृ.२३०।

उदहारण स्वरुप पद्मनाभस्वामी मंदिर केरल के तिरुवंतपुरम् में स्थित है। यहाँ भगवान विष्णु (अनंत पद्मनाभ) की प्रतिमा शिला की है, किन्तु स्वर्णाभूषणों से पूर्णतः अलंकृत रहती है , १८ फीट लम्बी प्रतिमा है। दूसरा उदाहरण है रामायण में सीता जी की स्वर्णमयी प्रतिमा का वर्णन मिलता है। पदार्थ चयन के पश्चात् मापन प्रणाली का विधान आता है, जिसमें "तल" और "अंगुल" की ईकाई का प्रयोग होता है। मुद्रा, भाव तथा अनुपात प्रतिमा की जीवंतता के प्रमुख आधार है ।अन्ततः प्राण-प्रतिष्ठा द्वारा प्रतिमा को आध्यात्मिक चेतना से युक्त किया जाता है। बृहत्वास्तुमाला में प्रतिष्ठा के काल, तिथि, एवं मास के अनुसार भी फल दिया गया है -

पौषे राजविवृद्धिः स्यान्माघे मासे तु संपदः।
फाल्गुने द्रव्यलाभश्च चैत्रे मासि शुभावहा॥"[11]
अतीवसौख्यं वैशाखे ज्येष्ठे मासे जयावहा।
आषाढे स्थापितो देवो यजमानविनाशनः।।[12]
सौरमानेन विज्ञेयः श्रावणे राज्यराष्ट्रहा।
भाद्रे सन्मानहानि: स्यादाश्विनेऽपि च राज्यहा॥[13]
कार्तिके शत्रुवृद्धिः स्यानमार्गशीर्षे तथैव हि।
सर्वेषामेव वर्णानां वसन्तश्शोभनो भवेत्॥[14]

पौष में प्रतिष्ठा करने से राज्यवृद्धि , माघ में सम्पति, फाल्गुन में द्रव्यलाभ, चैत्र में शुभ, वैशाख में विशेष सुख, ज्येष्ठ में जय, आषाढ में यजमान-नाश, श्रावण में राज्य तथा राष्ट्रहानि, भाद्रपद में अपमान, आश्विन में राज्यहानि, कार्तिक और मार्गशीर्ष में शत्रुवृद्धि होती है। सामान्य रूप से वसंत ऋतु सभी वर्णों के लिए शुभ है। पौष मास मकरसंक्रांति के बाद ही शुभ होता है। देवताओं की प्रकृति के अनुसार ही स्थापन किया जाता है। बृहद्वास्तुमाला के अनुसार –

मातृ भैरव वाराह नारसिंह त्रिविक्रमा:।
महिषासुरहंत्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने॥[15]

उग्र प्रकृति के देवताओं कि प्रतिमाओं के स्थापन का समय अलग बताया गया है। जैसे मातृकायें, भैरव, वाराह, नरसिंह, त्रिविक्रम(विष्णु) और महिषासुरघातिनी दुर्गा की स्थापना दक्षिणायन में की जा सकती हैं। श्रावण में शिवलिंग, आश्विन में भगवती, पौष में शेषनाग की स्थापना करनी चाहिए -

श्रावणे स्थापयेल्लिङ्गमाश्विने जगदम्बिकाम्।
मार्गशीर्षे हरिं चैव सर्पान् पौषेऽपि केचन॥[16]

---

[11]बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक ४ पृष्ठ १६०
[12] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक ५ पृष्ठ १६०
[13] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक ६ पृष्ठ १६१
[14] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक ७ पृष्ठ १६१
[15] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक ८ पृष्ठ १६१
[16] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक ६ पृष्ठ १६१

प्रतिपदा को छोड़कर सम्पूर्ण शुक्लपक्ष शुभ होता है और कृष्णपक्ष में केवल दशमी तक ही देवप्रतिमा स्थापन में तिथियाँ ग्राह्य होती है। जिस देवता की जो तिथि है , उसी तिथि में प्रतिष्ठा शुभ होती है। द्वितीया से दो, पञ्चमी से तीन, दशमी से चार तिथि और विशेषकर पूर्णिमा शुभ होती है। ब्राह्मणों के लिए द्वितीया – तृतीया, क्षत्रियों के लिए पञ्चमी- सतमी, वैश्यों के लिए दशमी और शूद्रों के लिए त्रयोदशी तिथि शुभ होती है-

बलपक्षः शुभदः समस्त: सदैव तत्राद्यदिनं विहाय।
अन्त्यत्रिभागं परिहृत्य कृष्णपक्षोऽपि शस्तः खलु पक्षयोऽस्तु॥ [17]
दिनेषु यस्य देवस्य या तिथिस्तत्र तस्य च।
द्वितीयादिद्वयोः पञ्चम्यादितस्तिसृषु क्रमात्॥ [18]
दशम्यादेश्चतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः।
ब्राह्मणानां द्वितीया च तृतीया चातिशोभना॥[19]
क्षत्रियाणां पञ्चमी तु सप्तमी शोभनप्रदा।
वैश्यानां दशमी प्रोक्ता शूद्राणाञ्च त्रयोदशी॥[20]

देवताओं की प्रतिष्ठा हेतु वार का फल भी दिया गया है जैसे – रविवार को प्रतिष्ठा करने से यश, सोमवार को कल्याण, मंगलवार को अग्निभय, बुधवार को वृद्धि, गुरूवार को दृढ़ता, शुक्रवार को लक्ष्मी प्राप्ति और शनिवार को स्थिरता होती हैं –

कीर्तिप्रदं क्षेमकरं कृशानुभीतिप्रदं वृद्धिकरं दृढ़ञ्च।
लक्ष्मीकरं सुस्थिरदं त्विनादिवारेषु संस्थापनमामनन्ति॥[21]

वास्तुराजवल्लभ ग्रन्थ के अनुसार देवताओं के प्रतिष्ठा की दिशा बताई गई है जैसे – ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इंद्र, सूर्य, कार्तिकेय की पूर्व अथवा पश्चिमाभिमुख स्थापना करें। ब्रह्मा, विष्णु, महेश का मुख किसी भी दिशा में किया जा सकता है। सूर्यादि ग्रह, चामुण्डा, मातृगण, कुबेर, गणेश, भैरव की स्थापना दक्षिण मुख तथा हनुमान जी की नैऋत्य मुख करनी चाहिए –

ब्रह्माविष्णुशिवेंद्रभास्करगुहा: पूर्वापरास्या: शुभा:।
प्रोक्तौ सर्वदिशामुखौ शिवजिनौ विष्णुर्विधाता तथा।
चामुण्डाग्रहमातरो धनपतिर्द्वैमातुरो भैरवो
देवो दक्षिणदिङ्मुखः कपिवरो नैऋत्यवक्त्रो भवेत्॥[22]

इस प्रकार देवताओं की प्रतिमा के स्थापन के लिए शुभ मुहूर्त , शुभ नक्षत्र, शुभ मास, शुभ वार, शुभ तिथि व स्थापन की दिशा आदि के विषयों में बताया गया है। अतः स्पष्ट है कि

[17] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक १० पृष्ठ १६२
[18] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक ११ पृष्ठ १६२
[19] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक १२ पृष्ठ १६२
[20] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक १३ पृष्ठ १६२
[21] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक १४ पृष्ठ १६२
[22] बृहद्वास्तुमाला प्रतिष्ठाप्रकरण श्लोक ३६ पृष्ठ १६७

प्रतिमा निर्माण विज्ञान भारतीय ज्ञान परम्परा का एक समन्वित एवं वैज्ञानिक अनुशासन है। जिसमें गणित, रसायन, धातुविज्ञान, मनोविज्ञान, वास्तुशास्त्र एवं दर्शन का अद्भुत संगम निहित है, यह केवल कलात्मक अभिव्यक्ति न होकर आध्यात्मिक चेतना का सजीव माध्यम है, जो भक्त एवं ब्रह्म के मध्य सेतु का कार्य करता है।

निष्कर्ष :-

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रतिमा निर्माण विज्ञान भारतीय ज्ञान परम्परा का अत्यन्त विकसित एवं वैज्ञानिक अनुशासन है। इसमें प्रतिमा के निर्माण से लेकर प्रतिष्ठा तक प्रत्येक चरण के लिए शास्त्रीय नियम निर्धारित किए गए हैं। शिला, काष्ठ एवं धातु जैसे पदार्थों का चयन, प्रतिमा की माप-प्रणाली, मुद्रा, भाव, अलंकरण, दिशा एवं प्रतिष्ठा का काल सभी का गहन आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक आधार है। महाकाल लोक, जगन्नाथ पुरी तथा पद्मनाभस्वामी मंदिर जैसे उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय प्रतिमा निर्माण परम्परा केवल प्राचीन धरोहर नहीं, बल्कि आज भी जीवंत सांस्कृतिक चेतना का आधार है। यद्यपि आधुनिक निर्माणों में कुछ स्थानों पर शास्त्रीय नियमों से आंशिक भिन्नताएँ दिखाई देती हैं, तथापि उनका उद्देश्य धार्मिक अनुभूति एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण को सशक्त करना है।

अतः कहा जा सकता है कि प्रतिमा निर्माण विज्ञान भारतीय संस्कृति में कला, वास्तु, दर्शन, धर्म एवं विज्ञान के समन्वित स्वरूप का अनुपम उदाहरण है। यह केवल मूर्ति निर्माण की प्रक्रिया नहीं, बल्कि भक्त एवं ब्रह्म के मध्य आध्यात्मिक सेतु स्थापित करने वाली दिव्य परम्परा है।

*शोधार्थी, महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)।

**असिस्टेन्ट प्रोफेसर, महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)।